हमारे सपनों के नए एशिया का निर्माण करो : तेइसवाँ न्यूज़लेटर (2026)

ब्लाइंड मेन अप्रेज़िंग एन एलिफेंट (अंधे व्यक्ति हाथी का मूल्यांकन करते हुए / अंधे और हाथी की कथा), तोमीओका तेस्साई (जापान), 1921.

प्यारे दोस्तो,

ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

15 अप्रैल को मुझे इंडोनेशिया के बांडुंग शहर में गेदुंग मेरदेका (आज़ादी हॉल) में बोलने का मौक़ा मिला। वहाँ मुझे किसी भूली याद का अहसास नहीं हुआ बल्कि किसी चीज़ की ज़रूरत महसूस हुई। बांडुंग किसी संग्रहालय का हिस्सा नहीं बल्कि एक ज़िंदा राजनीतिक विरासत है। 1955 में इसी हॉल में 29 अफ्रीकी और एशियाई देशों के नेताओं द्वारा उठाए गए सवाल आज भी वैसे ही खड़े हैं। क्या वैश्विक दक्षिण के देश संप्रभुता और गरिमा से एक साथ काम कर सकते हैं? क्या वे ऐसे संस्थान बना सकते हैं जो उनके लोगों के लिए काम करें न कि वैश्विक पूँजी के लिए? क्या वे सैन्य गठबंधनों और बाज़ार पर निर्भरता से परे सहयोग के नए स्वरूप गढ़ सकते हैं? ये सिर्फ़ ऐतिहासिक प्रश्न नहीं हैं। ये हमारे दौर के केंद्रीय प्रश्न हैं और हमारे संस्थान के काम को भी यही सवाल आकार देते हैं।

बांडुंग में गेदुंग मेरदेका में बोलना इस अधूरे इतिहास के बोझ को महसूस करना है। इस हॉल में 1955 में इकट्ठा हुए देशों की भावनाएँ अब भी मौजूद हैं, ये देश उपनिवेशवाद से सताए हुए, युद्ध से थके हुए थे, लेकिन फिर भी इनमें उम्मीद और उपनिवेशवाद-विरोधी आत्मविश्वास भरा हुआ था। मेरे ज़हन में सुकर्णो का उद्घाटन भाषण था, उनका विचार था कि लोगों को विचारधाराएँ नहीं बल्कि 'उपनिवेशवाद के तमाम रूपों के प्रति साझा नफ़रत' साथ लाती है। बांडुंग सिर्फ़ एक साधारण सम्मेलन नहीं था बल्कि इस बात पर ज़ोर देना था कि उन लोगों को इतिहास का पुनर्निर्माण करने का हक़ है

जिन्हें अब तक इसे आकार देने के अधिकार से दूर रखा गया।

कॉमरेडों की क्रांति, एस. सुजोजोनो (इंडोनेशिया), 1947.

आज यह **बांडुंग भावना** कहाँ है ? ऐसे विचार का आकर्षण आज के हमारे इस दौर से ग़ायब है, जहाँ वैश्विक दक्षिण निराश और बिखरा हुआ है। हालाँकि इन देशों में बढ़ता व्यापार और इनके आपसी सहयोग के लिए बने ब्रिक्स+ जैसे संस्थान अपवाद के रूप में मौजूद हैं। **वैश्विक दक्षिण में एक नई भावना** उभरी है। वैश्विक उत्तर के वर्चस्व वाले संस्थानों और ऋण बाज़ारों से आज़ाद होने की इच्छा ने वैश्विक दक्षिण में एक नया आत्मविश्वास पैदा किया है। लेकिन यह भावना अब भी वैश्विक उत्तर के संभावित दंड (प्रतिबंध और युद्ध) के डर और इसके **अवसरों** (ऋण और बाज़ार तक पहुँच) से ऊपर नहीं उठ पाई है।

इसलिए यहाँ पेचीदा परिस्थितियों और अंतर्विरोधों को एक-साथ काम करते हुए देखा जा सकता है। एक तरफ़, वैश्विक उत्तर की नैतिक सत्ता का पतन हो रहा है और वैश्विक दक्षिण में संप्रभुता तथा रणनीतिक स्वायत्तता का समर्थन करने वाली राजनीतिक चेतना विकसित हो रही है। दूसरी तरफ़, दक्षिण के देशों में अब भी संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) द्वारा दिखाए जा रहे ख़तरे को लेकर घबराहट है, ख़ासतौर से अब जब यूएस अपने पतन की प्रक्रिया में हमले कर रहा है। 2026 के **डेमोक्रेसी परसेप्शन इंडेक्स** (लोकतंत्र धारणा सूचकांक) में यूएस सत्ता की पहचान और उसके प्रति नापसंदगी के प्रबल प्रमाण हैं, जहाँ 97 देशों और क्षेत्रों में से केवल चार ने कहा कि वे यूएस सैन्य अड्डे की मेज़बानी का पक्ष लेंगे (इज़राइल, पोलैंड, दक्षिण कोरिया और यूएस टेरिटरी प्यूर्टो रिको)। कोई भी यूएस के साथ उलझना नहीं चाहता, लेकिन हर कोई यूएस सत्ता के भारी ख़तरे और पतन के बारे में जानता है – और क्यूबा, ईरान, फ़िलिस्तीन और वेनेज़ुएला में यूएस के हालिया हमलों ने उनकी याद ताज़ा भी कर दी है।

कपड़ों पर चर्चा, बद्री नारायण (भारत), 1997.

बांडुंग भावना को कई मंचों के ज़रिए संस्थात्मक रूप मिला, इनमें से सबसे अहम था गुट-निरपेक्ष आंदोलन (1961)। यह संगठन कई क्षेत्रीय संस्थानों के साथ-साथ बनाया गया था ताकि उत्तर-उपनिवेशवादी बिखराव से पैदा हुए संकट से लड़ा जा सके। गुट-निरपेक्ष आंदोलन यह समझ चुका था कि उत्तरी अटलांटिक देशों और बहुराष्ट्रीय कॉर्पोरेशनों के वर्चस्व वाली वैश्विक अर्थव्यवस्था को रोकने में सिर्फ़ राजनीतिक संप्रभुता काफ़ी नहीं। इसलिए इसने प्रस्ताव रखा कि ऐसे क्षेत्रीय संस्थान बनाए जाएँ जो तीसरी दुनिया की संप्रभुता की रक्षा करें, विकास में सहयोग करें और इसकी मोल-भाव की ताक़त को बढ़ाए। इन वैश्विक संस्थानों के साथ-साथ, ऐसे कार्यक्रमों की शृंखला तैयार की गई जो क्षेत्रीय और महाद्वीपीय एकजुटता का विकास करें और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ एक रक्षाकवच बनें।इन संस्थानों में शामिल थे अरब लीग़ (1945), ऑर्गनाइज़ेशन ऑफ़ अफ्रीकन यूनिटी या ओएयू (1963), ऑर्गनाइज़ेशन ऑफ़ इस्लामिक कोआपरेशन या ओआईसी (1969) और कैरेबियन कम्यूनिटी या कैरिकॉम (1973)।

घाना के पहले राष्ट्रपति क्वामे न्क्रूमाह की पहल से ओएयू का गठन हुआ। यह विदेशी पूँजी की लूट के ख़िलाफ़ इस महाद्वीप के राजनीतिक महासंघ (फ़ेडरेशन) के रूप में उभरा। ओएयू मुख्यत: उपनिवेशवाद-विरोधी एकजुटता, आज़ादी के आंदोलनों के लिए सहयोग जुटाने और क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध एक राजनयिक संस्थान बन गया। इसका उत्तराधिकारी अफ़्रीकी संघ (एयू), नवउदारवादी दलदल में पैदा हुआ था और इसने एजेंडा 2063 जैसी पूँजी-समर्थक नीतियों के माध्यम से महाद्वीपीय एकीकरण को बढ़ावा दिया।

साल 2008 में जब एयू आख़िरकार पूँजी-समर्थक नीतियों के छलावे में फँस गया, तब यूनियन ऑफ साउथ अमेरिकन नेशंस (दक्षिण अमेरिकी राष्ट्र संघ/यूएनएएसयूआर) का गठन हुआ ताकि वॉशिंगटन के दख़ल के बिना राजनीतिक सहयोग बनाया जा सके। अन्य व्यापार-केंद्रित गुटों के विपरीत, यूएनएएसयूआर ने बुनियादी ढाँचा एकीकरण, क्षेत्रीय स्वास्थ्य सहयोग, रक्षा समन्वय और राजनयिक मध्यस्थता पर ज़ोर दिया। हाल के वर्षों में **'एंग्री टाइड'** (गुस्से की लहर) के उद्भव ने यूएनएएसयूआर को उसी तरह कमज़ोर कर दिया है जिस तरह ऋण ने अफ़्रीका की सरकारों को कमज़ोर किया है और एयू की क्षमता को क्षीण कर दिया है।

इस बीच, एशिया क्षेत्रीय प्रोजेक्ट का ढाँचा तक भी बनाने में विफल रहा।

किसान, अली इमान (पाकिस्तान), 1956.

एशिया में महाद्वीपीय एकता के विचार में जापानी सैन्यवाद ने ज़हर घोला, जो पूरे महाद्वीप में अखिल-एशिया का झंडा

और ग्रेटर ईस्ट एशिया को-प्रॉस्पेरिटी स्फीयर (बृहत् पूर्वी एशिया सह-समृद्धि क्षेत्र) का नारा लेकर चला। टोक्यो की भाषा तो पश्चिमी उपनिवेशवाद से एशिया को आज़ाद करवाने वाली थी लेकिन इसकी सेना ने बर्बरता ही फैलाई। **फ़ासीवाद-विरोधी वैश्विक युद्ध** (जिसे ज़्यादातर द्वितीय विश्व युद्ध कहा जाता है) के बाद नए-नए आज़ाद हुए कई देशों को महाद्वीपीय एकता का विचार ख़तरनाक लगा। उन्हें डर था कि क्षेत्रीयतावाद कहीं ताकतवर शक्तियों की आकांक्षाओं के लिए एक मुखौटा भर न बनकर रह जाए।

फिर भी एशिया में एकता की इच्छा ख़त्म नहीं हुई। मार्च 1947 में जब ब्रिटिश साम्राज्य भारत से निकलने की तैयारी कर रहा था तो जवाहरलाल नेहरू ने नई दिल्ली में एशियन रिलेशंज़ कॉन्फ्रेन्स बुलाई। एशिया भर से आए प्रतिनिधियों में उपनिवेशवाद-विरोधी ऊर्जा उफ़ान पर थी, हालाँकि इनका ध्यान मुख्यत: इंडोनेशिया पर था जिसे डच साम्राज्यवाद फिर से क़ब्ज़े में लेना चाह रहा था। साल 1952 में बीजिंग, चीन में एशिया-प्रशांत शांति सम्मेलन हुआ, इसमें 50 देशों के 470 प्रतिनिधि इकट्ठा हुए। ये प्रतिनिधि प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति नहीं थे बल्कि मज़दूर संगठनों के सदस्य, लेखक, महिला संगठनों के सदस्य आदि थे जो कोरिया युद्ध, परमाणु हथियारों की होड़ और जापान के पुन: सैन्यीकरण के ख़िलाफ़ एक साथ आए थे। एशिया में एकता की इच्छा हमेशा से ही राजनयिक युक्तियों से कहीं बड़ी रही है: यह एक जीवंत साम्राज्यवाद-विरोधी जन परंपरा है।

इतिहास का हस्तक्षेप कठोर रहा। राज्यों के बीच संघर्ष और यूएस सैन्य गठबंधनों के सघन ढाँचे ने महाद्वीप को तोड़ दिया। एशियाई क्षेत्रवाद सावधानीपूर्वक और असमान रूप से उभरा। प्रारंभिक मंचों ने इस प्रक्रिया के लिए अच्छा संकेत नहीं दिया। दक्षिणपूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (आसियान/ASEAN) – जिसकी स्थापना 1967 में इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपींस, सिंगापुर और थाईलैंड द्वारा की गई थी – वियतनाम के ख़िलाफ़ यूएस युद्ध की छाया में पैदा हुआ था और उसका एक साम्यवाद-विरोधी झुकाव था। यह अब काफ़ी हद तक एक व्यापार निकाय है। यही बात एशियाई विकास बैंक (एडीबी) के बारे में भी कही जा सकती है, जो संयुक्त राष्ट्र आर्थिक आयोग के लिए एशिया और सुदूर पूर्व (अब संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक आयोग के लिए एशिया और प्रशांत) के भीतर विकास वित्त की माँगों से उभरा था, लेकिन जल्द ही यूएस ट्रेजरी (वित्त विभाग) के वर्चस्व के तहत नवउदारवादी नीति का एक और साधन बन गया।

शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) – जिसकी स्थापना 2001 में चीन, कजाकिस्तान, किर्गिस्तान, रूस, ताजिकिस्तान और उज्बेकिस्तान द्वारा की गई थी – एक अन्य ऐतिहासिक **प्रवृत्ति** को दर्शाता है : एक ऐसी व्यवस्था का धीमा निर्माण जो अब उत्तरी अटलांटिक के इर्द-गिर्द नहीं, बल्कि एशिया के इर्द-गिर्द संगठित हुई, जो विश्व अर्थव्यवस्था का उभरता हुआ केंद्र है। हालाँकि एक सुरक्षा संगठन के रूप में शुरू हुए एससीओ को सुरक्षा को क्षेत्रीय मुद्दा बनाने और विदेशी सैन्य अड्डों को क्षेत्र से बाहर निकालने में सीमित सफलता मिली। लेकिन अब यह एक वैकल्पिक व्यापार और वित्तीय प्रणाली के निर्माण के लिए एक मंच के रूप में विकसित हो रहा है। चीन और वियतनाम के उच्च-गुणवत्ता वाले विनिर्माण बेल्ट से लेकर भारत और दक्षिण कोरिया के प्रौद्योगिकी गलियारों तक, यह महाद्वीप वैश्विक विकास का प्रमुख **इंजन** बन गया है। हालाँकि, यह आर्थिक परिवर्तन राजनीतिक रूप से अब भी बिखरा हुआ है। अंतर-राज्यीय प्रतिद्वंद्विता, सीमा विवाद, प्रतिस्पर्धी राष्ट्रवाद, सैन्य गठबंधन और बाहरी शक्तियों की निरंतर उपस्थिति ठीक उसी समय महाद्वीप को तोड़ रही है जब इतिहास अधिक समन्वय की माँग कर रहा है।

चाय, वू काओ दाम (वियतनाम), 1930.

एक एशियाई संघ उस नैतिक क्षितिज को पुनर्जीवित कर सकता है जिसे बांडुंग ने एक बार प्रस्तुत किया था। आज की दुनिया विखंडन और निंदकवाद (सिनिसिज़्म) से जूझ रही है। राजनीति को परिवर्तन के बजाय प्रबंधन तक सीमित कर दिया गया है। फ़िलिस्तीन क्रूर कब्जे के अधीन है। युद्ध, प्रतिबंध और सैन्यीकरण लगातार दुनिया भर के समाजों को तबाह कर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन अरबों लोगों, विशेष रूप से ग्रामीण गरीबों को ख़तरे में डाल रहा है। इस बीच, चंद लोगों के हाथों में पूँजी संचय बढ़ता चला जा रहा है जबकि श्रमिक अनिश्चित परिस्थितियों में जीने को मजबूर हैं। ये कोई राष्ट्रीय या क्षेत्रीय समस्याएँ नहीं हैं। ये संरचनात्मक समस्याएँ हैं जो एक वैश्विक प्रणाली द्वारा उत्पन्न होती हैं जो मानवता के बजाय लाभ को तरजीह देती है। बांडुंग भावना के दौर की पीढ़ी का मानना था कि वर्चस्व के खिलाफ संघर्ष कर रहे लोगों के बीच एकजुटता के माध्यम से एक और दुनिया का निर्माण किया जा सकता है। वह भावना आज भी आवश्यक बनी हुई है।

एक एशियाई संघ इसलिए कोई यूटोपियन नारा नहीं बल्कि एक भौतिक आवश्यकता है। एशिया की अर्थव्यवस्थाएँ पहले से ही व्यापार, आपूर्ति शृंखलाओं, प्रवासन, वित्त, ऊर्जा प्रवाह और बुनियादी ढाँचा गलियारों के माध्यम से गहराई से

जुड़ी हुई हैं, फिर भी इन **अंतर्संबंधों** को संभालने के लिए कोई सक्षम महाद्वीपीय राजनीतिक तंत्र मौजूद नहीं है। क्षेत्रीय समन्वय के लिए संस्थानों के बिना, आर्थिक एकीकरण यह जोख़िम पैदा करता है कि असमानता, प्रतिस्पर्धा और सैन्य तनाव बढ़ेंगे। महाद्वीप को ऐसे साझा संस्थानों की आवश्यकता है जो कूटनीति के माध्यम से अंतर-राज्यीय तनावों को कम कर सकें, औद्योगिक और तकनीकी योजना का समन्वय कर सकें, खाद्य और ऊर्जा प्रणालियों को सुरक्षित बना सकें, जल और जलवायु संकटों का प्रबंधन कर सकें, तथा बाहरी शक्तियों को एशियाई प्रतिद्वंद्विताओं को स्थायी अस्थिरता के क्षेत्रों में बदलने से रोक सकें। सबसे बढ़कर एशिया को अपने आर्थिक भार के बराबर एक सामूहिक राजनीतिक आवाज़ की आवश्यकता है। अधिक क्षेत्रीय एकता के बिना एशिया का उदय विखंडन, टैरिफ, प्रतिबंध, सैन्यीकरण और बाहरी दख़ल की चपेट में फँसा रहेगा।

पंखे के साथ नाचतीं लड़कियाँ, पैन युलियांग (चीन), 1955

गेदुंग मेरदेका हॉल में खड़े होकर मुझे सिर्फ़ 1955 में यहाँ इकट्ठा हुए नेताओं की ही याद नहीं आई बल्कि उनके बाद आने वाली पीढ़ियों की भी याद आई – जिन्होंने एशिया भर में ज़मीन, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं, मज़दूरों के अधिकारों और सांस्कृतिक गरिमा के लिए संघर्ष किए। उनमें से कइयों के सपने बिखरे ज़रूर पर टूटे नहीं। बांडुंग में उभरी इच्छा इसलिए बची हुई है क्योंकि इसे जन्म देने वाली परिस्थितियाँ भी बरक़रार हैं। उपनिवेशवाद का औपचारिक अंत तो हो गया पर इसमें निहित ऊँच-नीच नए स्वरूपों में अब भी बना हुआ है। आर्थिक निर्भरता अब भी बिना रोक-टोक के चल रही है। सैन्य ताक़त अब भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को आकार देती है। इन सबके बावजूद प्रतिरोध भी जारी है। वैश्विक

दक्षिण के लोग संप्रभुता, समानता और शांति की माँग कर रहे हैं।

नवंबर 2025 में मैंने ट्राईकॉन्टिनेंटल एशिया के लिए एक **लेख** लिखा, शीर्षक था क्या एशिया अब भी एक संभावना है? मेरा जवाब था 'अच्छा होगा कि कलाकार और बुद्धिजीवी एक नए प्रगतिशील अखिल-एशियावाद पर गंभीर बातचीत शुरू करें — एक नए क़िस्म की समाजवादी दुनिया का महाद्वीपीय दृष्टिकोण जो लालच से परे देखे और मानवीय अनुभव और संवेदना के व्यापक फ़लक की ओर मुड़े'। हम अपने संस्थान के एशिया विभाग में जो **काम** कर रहे हैं वह ऐसी ही बातचीत और दृष्टिकोण को शुरू करने का एक प्रयास है।

मुझे अब भी लगता है कि एक नए प्रगतिशील अखिल-एशियावाद का विचार उस बातचीत को जन्म दे सकता है जिसकी इस क्षेत्र को बेहद ज़रूरत है। शायद हम 2030 में इंडोनेशिया में बांडुंग की 75वीं वर्षगाँठ पर इकट्ठा हों और एक एशियाई संघ की स्थापना करें। लेकिन यह तभी संभव है जब एशिया के लोग अपने क्षेत्र के सैन्यीकरण के ख़िलाफ़ प्रतिरोध जारी रखें। ओकिनावा से फ़िलिपींस तक, पहले ही कई आंदोलन यूएस सैन्य अड्डों को हटाने की **माँग** कर रहे हैं। यह सही मायने में क्षेत्रीय सहयोग के लिए अनिवार्य है।

1947 में एशियन रिलेशंस कॉन्फ्रेंस में, नेहरू ने अपने भाषण का अंत संघर्ष के लिए एक शक्तिशाली आह्वान और एक संघर्षरत जनता को पहचानते हुए किया :

> एशिया के सभी लोगों में एक नई जीवंतता और शक्तिशाली रचनात्मक प्रेरणा है। जनता जागृत है और अपनी विरासत की माँग करती है। पूरे एशिया में तेज़ हवाएँ चल रही हैं। आइए हम उनसे न डरें, बल्कि उनका स्वागत करें, क्योंकि केवल उनकी मदद से ही हम अपने सपनों का नया एशिया बना सकते हैं।

स्नेह सहित,

विजय